ख्यातिवाद

संजीव कुमार सिंह

शोध सारः–भारतीय दर्शन में भ्रम की व्याख्या के लिए उसके कारण एवं उसके स्वरुप को प्रस्तुत करनेवाला मत ही ख्यातिवाद कहलाता है। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा नहीं समझना अपितु शून्य रूप में समझना ही भ्रम कहलाता है। जैसे–रज्जु को सर्प समझना। यह मिथ्याज्ञान व्यवहार में तो बाधक होता ही है तात्त्वि सत्य के ज्ञान में भी बाधक होता है, परन्तु सत्य ज्ञान की प्राप्ति तो सर्वथा आवश्यक है। सत्य ज्ञान की प्राप्ति में जो मिथ्याज्ञान बाधक है उसका ज्ञान तथा उसके कारण का ज्ञान भी हमारे लिए आवश्यक है। वस्तुतः तभी हम सत्य से परिचित हो सकते है। इसलिए आचार्यो ने मिथ्याज्ञान पर भी विचार किया है, यहीं विचार ख्यातिवाद कहलाता है।

ख्याति का शाब्दिक अर्थ है ज्ञान परन्तु भारतीय दर्शन में यह भ्रमात्मक ज्ञान के रूप में रूढ़ हो गया है। भारतीय दर्शन में भ्रम के स्वरूप और उसकी स्थिति को लेकर विवाद है। इस विवाह के क्रम में वस्तु के दृश्य स्वरुप, वस्तु के यथार्थ स्वरुप तथा उस वस्तु के इन दोनों स्वरूपों के मध्य अन्तः सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। भारतीय दर्शन में भ्रम के स्वरुप और उसकी स्थिति को लेकर हुए विवाद का मुख्य कारण विभिन्न दर्शनों की अपनी पृथक–पृथक मौलिक मान्यताएँ है। भारतीय दर्शन में भ्रम के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रचलित है–

1. मीमांसा दर्शन : प्रभाकर – अख्यातिवाद
   कुमारिलह – विपरीतख्यातिवाद
2. बौद्धदर्शन : योगाचार विज्ञानवाद – आत्मख्याति
   माध्यमिक शून्यवाद – शून्यताख्याति
3. न्यायवैशेषिक : अन्यथाख्यातिवाद
4. शंकराचार्य : अर्निवचनीय ख्याति
5. रामानुज : सत्ख्याति
6. जैन : सत्–असत् ख्याति

परञ्च प्रस्तुत शोध लेख में मुख्यतया मीमांसकामिमत संगोपाङ्ग वर्णन किया गया है। इस लेख में अख्यातिवाद तथा आत्मख्यातिवाद का खण्डन तथा विपरीतख्यातिवाद का समर्थन करने का सफल प्रयास मेरे द्वारा किया गया है।

अख्यातिवाद-

अख्यातिवाद मीमांसकों का मत है। उल्लेखनीय है कि मीमांसक वस्तुवादी है। वे ज्ञान को स्वत: प्रामाण्य मानते है किन्तु तब तो भ्रम होता ही नहीं चाहिए किन्तु क्रम-भ्रम होता है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता रस्सी में सर्प और सीप में चाँदी का भ्रम लोगों को कई बार होता है। यदि जो कुछ दिखाई देता है वह सत्य है तब तो रस्सी में सर्प का भ्रम नहीं कहा जा सकता। इसकी व्याख्या कैसे हो ? इसे लेकर मीमांसकों में दो मत है-प्रभाकर का मत और कुमारिल यह का मत अख्यातिवाद प्रभाकर का मत है। प्रभाकर यहाँ कहते है कि भ्रम वास्तव में एक प्रकार का ज्ञान ही है। इससे दोष केवल यह है कि यह अपूर्ण ज्ञान है। आंशिक ज्ञान है वस्तुत: सारा ज्ञान यथार्थ होता पर पूर्ण नहीं होता है। इस प्रकार उनमें प्रभा और अप्रभा में भेद तात्त्विक नहीं मात्रात्मक है। प्रभा समग्र ज्ञान है जबकि अप्रभा (भ्रम) आंशिक और अपूर्ण ज्ञान इस तरह वे भ्रम को वे मिथ्याज्ञान नहीं कहते, अपूर्ण ज्ञान कहते है।

भ्रम की उत्पत्ति का कारण यहाँ प्रश्न उठता है कि आखिर यह होता क्या है ? प्रभाकर के अनुसार भ्रम एक ज्ञान नहीं दो ज्ञान है एक प्रत्यक्ष ज्ञान और दूसरा स्मृति ज्ञान। इसमें विषय भी दो होते हैं। भ्रम में वस्तुत: इन अलग-अलग विषयों का भेद नहीं होता बल्कि दोनों का सम्मिश्रण हो जाता है। जैसे-शुक्ति रजत भ्रम में शक्ति और रजत ये दो विषय है। शुक्ति (सीप) में रजत का भ्रम इसलिए होता है क्योंकि कहीं, कभी देखी गई चाँदी (स्मृति) का सम्मिश्रण हम अभी प्रत्यक्ष दिखनेवाली सीप में कर रहे है। यह गड़बड़ी हमारे स्मृति दोष के कारण होती है। दूसरे शब्दों में भ्रम स्मृति दोष के कारण उत्पन्न भेद-ज्ञान का अभाव (विवेकाग्रह) है। यह हमारा अविवेक है। भ्रम वस्तुत: सत्य ज्ञान का अभाव है, यह अख्याति (अज्ञान) है, मिथ्याख्याति नहीं।

इस प्रकार प्रभाकर के अनुसार हमें मिथ्याज्ञान होता ही नहीं है। हमारी अनुभूति मिथ्या नहीं होती, वह अपूर्ण हो सकती है। परन्तु यह माना जाता है। कि भ्रमात्मक ज्ञान एकिक ज्ञान है। यह कहना अनुचित है कि भ्रम में हमें दो ज्ञानों प्रत्यक्ष और स्मृति का सम्मिश्रण होता है। इडं रजतम् में यह रजत है। यह प्रत्यक्ष का विषय है। इसमें स्मृति का कुछ भी अंश नहीं होता। यदि रजतम् एकाकार ज्ञान नहीं होता तो यह रजत है यह कहने के स्थान पर मां रजत देख रहा हूँ और रजत का स्मरण कर रहा हूँ, ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार इस वाद में अभाव को विषय बनाया गया है परन्तु प्रभाकर 'अभाव' पदार्थ नहीं मानते तब वह अख्यातिवाद में कैसे विश्वास कर सकते है। अत: अख्यातिवाद भ्रम की उचित व्याख्या करते हुए नहीं दिखाई देता।

आत्मख्यातिवाद खण्डन-योगाचार विज्ञानवादियों का भ्रम सम्बन्धी सिद्धान्त आत्मख्याति

(विज्ञानख्याति) कहा जाता है। इनके अनुसार विज्ञान (प्रत्यय) ही एकमात्र सत् है। इनसे भिन्न पृथक और स्वतंत्र बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व नहीं है। वस्तुएँ प्रत्यय मात्र है। ये आत्मनिहित प्रत्यय ही बाह्य पदार्थ का रूप लेकर बर्हिवत प्रतीत होते है। चूँकि आत्मनिहित विज्ञान ही गलत प्रक्रिया के कारण बर्हिवत प्रतीत होते हैं, इसलिए इनके भ्रम सम्बन्धी सिद्धान्त को आत्मख्यातिवाद कहा जाता है।

आत्मख्यातिवाद को मानने पर यथार्थज्ञान एवं अयथार्थज्ञान के बीच भेद समाप्त हो जाता है। आत्मख्यातिवाद को मानने पर ज्ञान की सम्यकरूपेण विवेचना नहीं हो पाती। यहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय में भेद नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप ज्ञान प्रक्रिया की आवश्यकता शर्ते पूरी नहीं हो पाती।

विपरीतख्यातिवाद समर्थन-कुमारिलभट्ट का भ्रम सम्बन्धी सिद्धान्त विपरीत ख्यातिवाद कहलाता है। इनके अनुसार भ्रम अयथार्थ ज्ञान है, गलत ज्ञान है, मिथ्याज्ञान है। जब हम सीपी को रजत के रूप में देखकर यह कहते हैं कि ''इदं रजतम्'' (यह रजत चाँदी है) तो फिर यहाँ उद्देश्य और विधेय दोनों पृथक-पृथक रूप में सत् है, परन्तु भ्रम में उनका गलत सम्बन्ध हो जाता है। जगत में सीपी और रजत दोनों की सत्ता है, परन्तु भ्रम में हम उन दोनों को उद्देश्य-विधेय रूप में जोड़ देते हैं। इस प्रकार भ्रम विषय को लेकर नहीं, उनके सम्बन्ध को लेकर होता है। इसमें प्रस्तुत व्यक्ति विपरीत वस्तु के रूप में दिखाई देती है। यहाँ प्रभाकर के विपरीत कुमारिल भट्ट भ्रम को एक ही ज्ञान कहते हैं, जिसमें दो वस्तुओं का गलत संयोजन हो जाता है। यह भ्रम प्रभाकर की तरह भेदाग्रह नहीं है अपितु भ्रम वस्तु का अन्यथा रूप या विपरीत रूप बोध है। यहाँ भ्रम का कारण सादृश्य प्रतीति और नेत्रदोष दोनों है।

(क) सादृश्य प्रतीति, जैसे शुक्ति और रजत में चमकीलेपन की समानता।

(ख) नेत्र-दोष-जिसका बाध सम्यकज्ञान से हो जाता है (प्रभाकर अनुसार भ्रम कारण स्मृति दोष है) वैसे सादृश्य प्रतीति नेत्र-दोष के कारण ही होती है, अत: भ्रम की उत्पत्ति की यहीं मुख्य कारण है।

प्रभाकर भ्रम की व्याख्या ज्ञान के अभाव के रूप में करते है जबकि कुमारिलभट्ट भ्रम की व्याख्या अयथार्थज्ञान (भावात्मक अज्ञान) के रूप में करते हैं। कुमारिलभट्ट के अनुसार भ्रम ज्ञान का अभाव न होकर एक प्रकार का बोध है। इनके अनुसार कारण सामग्री में दोष के कारण ही भ्रम की उत्पत्ति होती है। ऐसी स्थिति में विपरीतख्याति का समर्थन पक्ष के रूप में स्वीकार किया जा सकता

है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. भारतीय, महेश–भारतीय दर्शन की प्रमुख समस्याएँ इण्डो विजन प्रा. लि., गाजियाबाद 1999 (द्वितीय संख्या)
2. शर्मा, चन्द्रघर–भारतीय दर्शन आलोचन एवं अनुशीलन मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1995 (द्वितीय संस्करण)
3. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद–भारतीय दर्शन की रुपरेखा मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1993 (पंचम संस्करण)
4. Chatterjee, Satishchandra-An introduction of indian Philosophy, university of calcutta, 1984 (Eight reprint edition first Ed. 1939)
5. शर्मा, राममूर्ति–भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा मणिद्वीप दिल्ली–1999.